प्राचीन जैन इतिहास संग्रह

(तृतीय भाग)

श्री जैन [illegible]
जैन ज्ञान भंडार
मु० पाडीव (राज०)

—ज्ञानसुन्दर

जैन इतिहास ज्ञान भानू किरण नं० ३

❀ श्री रत्नप्रभ सूरिश्वर पाद पद्मेभ्योनमः ❀

प्राचीन जैन इतिहास संग्रह

(तृतीय भाग)

[कलिङ्ग देश का इतिहास]

लेखक

मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज

प्रकाशक

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला

मु० फलोदी (मारवाड़)

प्रथमावृति १०००] ओसवाल सं० २३९१ [वि० सं० १९९१

प्रबन्धकर्त्ता
मास्टर भीखमचन्द
शिवगंज (सिरोही)

द्रव्य सहायक
श्रीसंघ—शिवगंज (सिरोही) श्रीमद् पंचमाङ्ग भगवतीजी
सूत्र की ज्ञानपूजा की आमन्द से।

मुद्रक
सत्यव्रत शर्मा
शान्ति प्रेस, शीतलागली—आगरा।

* श्री रत्नप्रभसूरीश्वर पादपद्मेभ्योनमः *

प्राचीन जैन इतिहास संग्रह

(तीसरा भाग)

[कलिंग देश का इतिहास]

मगध देश का निकटवर्ती प्रदेश कलिङ्ग भी जैनों का एक बड़ा केन्द्र था। इस देश का इतिहास बहुत प्राचीन है। भगवान आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव स्वामी ने अपने १०० पुत्रों को जब अपना राज्य बाँटा था तो कलिङ्ग नामक एक पुत्र के हिस्से में यह प्रदेश आया था। उसके नाम के पीछे यह प्रदेश भी कलिङ्ग कहलाने लगा। चिरकाल तक इस प्रदेश का यही नाम चलता रहा। वेद,

स्मृति, महाभारत, रामायण और पुराणों में भी इस देश का जहाँ तहाँ कलिङ्ग नाम से ही उल्लेख हुआ है। भगवान महावीर स्वामी के शासन तक इसका नाम कलिंग कहा जाता था। श्री पन्नवणा सूत्र में जहाँ साढ़े पच्चीस आर्य क्षेत्रों का उल्लेख है उन में से एक का नाम कलिंग लिखा हुआ है। यथा—

"राजगिह मगह चंपा अंगा, तहतामलिति बंगाय।
कंचणपुरं कलिंगा बणारसी चैव कासीय।"

उस समय कलिंग की राजधानी कांचनपुर थी। इस देश पर कई राजाओं का अधिकार रहा है। तथा कई महर्षियों ने इस पवित्र भूमि पर विहार किया है तेवीसवें तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथ प्रभु ने भी अपने चरणकमलों से इस प्रदेश को पावन किया था। तत्पश्चात् आप के शिष्य-समुदाय का इस प्रान्त में विशेष विचरण हुआ था। महावीर प्रभु ने भी इस प्रान्त को पधार कर पवित्र किया था। इस प्रान्त में कुमारगिरि (उदयगिरि) तथा कुमारी (खण्डगिरि) नामक दो पहाड़ियाँ हैं जिन पर कई जैन-मंदिर तथा श्रमण समाज के लिए कन्दराएं हैं इस कारण से यह देश जैनियों का परम पवित्र तीर्थ रहा है।

कलिंग, अंग, बंग और मगध में ये दोनों पहाड़ियाँ शत्रुंजय गिरनार अवतार नाम से भी प्रसिद्ध थीं। अतएव इस तीर्थ पर दूर दूर से कई संघ यात्रा करने के हित आया करते थे। ब्राह्मणों ने अपने ग्रंथों में कलिंग वासियों को 'वेदधर्म विनाशक' बताया है।

इससे मालूम होता है कि कलिंग निवासी सब एक ही धर्म के उपासक थे। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि वे सब के सब जैनी थे। ब्राह्मण लोग कहीं कहीं अपने ग्रन्थों में बौद्धों को भी 'वेदधर्म विनाशक' की उपाधि से उल्लेख करते थे, पर कलिंग में पहले बौद्धों का नाम-निशान तक नहीं था। महाराजा अशोक ने कलिंग देश पर ई० सं० २६२ पूर्व में आक्रमण किया था उसी के बाद कलिंग देश में बौद्धों का प्रवेश हुआ था। इसके प्रथम ही ब्राह्मणों ने अपने आदित्य पुराण में यहाँ तक लिख दिया कि कलिङ्ग देश अनार्य लोगों के रहने की भूमि है। जो ब्राह्मण कलिंग में प्रवेश करेगा वह पतित समझा जावेगा। यथा—

"गत्वैतान् काम तो देशात् कलिङ्गाश्च पतेत् द्विजः।"

यह भी बहुत सम्भव है कि शायद ब्राह्मणों ने कलिंग देश में पहुँच कर जैनधर्म स्वीकार कर लिया हो। इसी हेतु उन्होंने कलिंग के प्रवेश का भी निषेध किया।

एक बार तो उस समय जैनों का पूरा साम्राज्य कलिंग देश में होगया पर आज वहाँ जैनियों का नाम निशान तक नहीं। इसका कारण सिवाय काल की कुटिलता के और क्या हो सकता है। तथापि दूरदर्शी जैनियों ने अपने धर्म के स्मृति के हित चिह्नरूप से कलिंग देश में कुछ न कुछ तो कार्य अवश्य किया। वे सर्वथा वंचित नहीं रहे। इतिहास साफ़-साफ़ बताता है कि विक्रम की बारहवीं शताब्दि तक तो कलिंग देश में जैनियों की

पूर्ण जाहोजलाली थी। इतना ही नहीं विक्रम की सोलहवीं शताब्दि में सूर्यवंशी महाराजा प्रतापरुद्र वहाँ का जैनी राजा था। उस समय तक तो जैन धर्म का अभ्युदय कलिंग देश में हो रहा था। पर प्रश्न यह उपस्थित होता है कि सर्वथा जैनधर्म एकाएक कलिंग में से कैसे चला गया। इस पर विद्वानों का मत है कि जैनों पर किसी विधर्मी राजा की निर्दयता से ऐसे अत्याचार हुए कि उन्हें कलिंग देश का परित्यागन करना पड़ा। यदि इस प्रकार की कोई आपत्ति नहीं आती तो कदापि जैनी इस देश को नहीं छोड़ते।

केवल इसी देश में अत्याचार हुआ हो ऐसी बात नहीं है, विक्रम की आठवीं नौवीं शताब्दि में महाराष्ट्र में भी जैनों को इसी प्रकार की मुसीबत से सामना करना पड़ा क्योंकि विधर्म्मी नरेशों से जैनियों की उन्नति देखी नहीं जाती थी। वे तो जैनियों को दुःख पहुँचाना अपना धर्म समझते थे। कई जैन साधु शूली पर भी लटका दिये गये। वे जीते जी कोल्हू में पेरे गये। उन्हें ज़मीन में आधा गाढ़ कर काग और कुत्तों से नुचवाया गया इसके कई प्रमाण भी उपस्थित हैं। "हालस्य महात्म्य" नामक ग्रन्थ में, जो तामिली भाषा में है, उसके ६८ वें प्रकरण में इन अत्याचारों का रोमाँचकारी विस्तृत वर्णन मौजूद है किन्तु जैनियों ने अपने राजत्व में किसी विधर्मी को नहीं सताया था यही जैनियों की विशेषता है। यह कम गौरव की

बात नहीं है कि जैनी अपने शत्रु से बदला लेने का विचार तक नहीं करते थे। यदि जैनियों की नीति कुटिल होती तो क्या वे चन्द्रगुप्त मौर्य या सम्प्रति नरेश के राज्य में विधर्म्मियों को सताने से चूकते, कदापि नहीं। पर नहीं, जैनी किसी को सताना तो दूर रहा, दूसरे जीव के प्रति कभी असद् विचार तक नहीं करते।

जैन शास्त्रकारों का यह खास मन्तव्य है कि अपने प्रकाश द्वारा दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करना तथा सदुपदेश द्वारा भूले भटकों तथा अटकों को राह बताना चाहिए। सबके प्रति मैत्रीभाव रखना यह जैनियों का साधारण आचार है। जो थोड़ा भी जैनधर्म से परिचित होगा उपरोक्त बात का अवश्यमेव समर्थन करेगा। परन्तु विधर्म्मियों ने अपनी सत्ता के मद में जैनियों पर ऐसे ऐसे कष्टप्रद अत्याचार किये कि जिनका वर्णन याद आते ही रोमांच खड़े हो जाते हैं तथा हृदय थर थर काँपने लगता है। जिस मात्रा में जैनियों में दया का संचार था विधर्मी उसी मात्रा में निर्दयता का बर्ताव कर जैनियों को इस दया के लिए चिढ़ाते थे। पर जैनी इस भयावनी अवस्था में भी अपने न्यायपथ से तनिक भी विचलित नहीं हुए। यही कारण है कि आज तक जैनी अपने पैरों पर खड़े हुए हैं और न्याय पथ पर पूर्णरूप से आरूढ़ हैं। धर्म का प्रेम जैनियों की रग-रग में रमा हुआ है जैनों के स्याद्वाद सिद्धान्तों का आज भी सारा संसार लोहा मानता है। स्याद्वाद के प्रचंड शस्त्र के सामने मिथ्यात्वियों का कुतर्क टिक

नहीं सकता। स्याद्वाद की नीतिद्वारा आज जैनी सब विधर्म्मियों का मुँह बन्द कर सकने में समर्थ हैं। कलिङ्ग देश में जैनियों का नाम निशानतक जो आज नहीं मिलता है इसका वास्तविक कारण यही है कि विधर्म्मियों ने जैनियों को दुःख दे दे कर वहाँ से तिरोहित किया। आधुनिक विद्वद्मंडली भी यही बात कहती है।

आज इस वैज्ञानिक युग में प्रत्यक्ष बातों का ही प्रभाव अधिक पड़ता है। पुरातत्व की खोज और अनुसंधान से ऐतिहासिक सामग्री इतनी उपलब्ध हुई है कि जो हमारे संदेह को मिटाने के लिए पर्याप्त है। जिन प्रतापशाली महापुरुषों के नाम निशान भी हमें ज्ञात नहीं थे, उन्हीं का जीवन वृत्तान्त आज शिलालेखों, ताम्रपत्रों और सिक्कों में पाया जाता है। उस समय की राजनैतिक दशा, सामाजिक व्यवस्था और धार्मिक प्रवृति का प्रामाणिक उल्लेख यत्र-तत्र खोजों से मिला है। इन खोजोंद्वारा जितनी सामग्री प्राप्त हुई है उन में महाराजा खारवेल का खुदा हुआ शिलालेख बहुत ही महत्व की वस्तु है।

खारवेल का यह महत्वपूर्ण शिलालेख खण्डगिरि उदयगिरि पहाड़ी की हस्ती गुफा से मिला है। इस लेख को सब से प्रथम पादरी स्टर्लिङ्गने ई० सन् १८२० में देखा था। पर पादरी साहब उस लेख को साफ़ तौर से नहीं पढ़ सके। इसके कई कारण थे। प्रथम तो वह लेख २००० वर्ष से भी अधिक पुराना होने के कारण जर्जर अवस्था में था। यह शिलालेख इतने वर्षों तक

सुरक्षित न रहने के कारण घिस भी गया था। कई अक्षर मिटने लग गये थे और कई अक्षर तो बिल्कुल नष्ट भी हो चुके थे। इस पर भी लेख पालीभाषा से मिलता हुआ शास्त्रों की शैली से लिखा हुआ था। इस कारण पादरी साहब लेख का सार नहीं समझ सके। तथापि पादरी साहब भारतियों की तरह हताश नहीं हुए। वे इस लेख के पीछे चित्त लगाकर पड़ गये। उन्होंने इस शिलालेख के सम्बन्ध में अँगरेजी पत्रों में खासी चर्चा प्रारम्भ करदी। सारे पुरातत्वियों का ध्यान इस शिलालेख की ओर सहज ही में आकर्षित हो गया।

इस शिलालेख के विषय में कई तरह का पत्रव्यवहार पुरातत्वज्ञों के आपस में चला। अन्त में इस लेख को देखने की इच्छा से सबने मिलकर एक तिथि निश्चत् की। उस तिथि पर इस शिलालेख को पढ़ने के लिए सैकड़ों यूरोपियन एकत्रित हुए। कई तरह से प्रयत्न करके उन्होंने उसका मतलब जानना चाहा पर वे अन्त में असफल हुए। इतने पर भी उन्होंने प्रयत्न जारी रक्खा। इस शिलालेख के कई फोटू लिये गये। कागज़ लगा लगा कर कई चित्र लिखे गये। यह शिलालेख चित्र के रूप में समाचार पत्रों में भी प्रकाशित हुआ। इस शिलालेख पर कई पुस्तकें निकलीं। इस प्रयत्न में विशेष भाग निम्नलिखित यूरोपियनों ने लिया। डॉ. टामस, मेजर कीट्ट, जनरल कनिंग हाम, प्रसिद्ध इतिहासकार विन्सटेंट, डॉ. स्मिथ, बिहार गवर्नर सर एडवर्ड आदि आदि।

जब इसका पूरा पता नहीं चला तो इस खोज के आन्दोलन को भारत सरकार ने अपने हाथ में ले लिया। यह शिलालेख यहाँ से इङ्गलैण्ड भेजा गया। वहाँ के वैज्ञानिकों ने उसकी विचित्र तरह से फोटू ली। भारतीय पुरातत्वज्ञ भी नींद नहीं ले रहे थे। इन्होंने भी कम प्रयत्न नहीं किया। महाशय जायसवाल, मिस्टर राखलदास बनर्जी, श्रीयुत भगवानदास इन्दर्जी और अन्त में सफलता प्राप्त करनेवाले श्रीमान् केशवलाल हर्षदराय ध्रुव थे। श्री० केशवलाल ने अविरल प्रयत्न से इस लेख का पता बताया। तब से सन् १९१७ अर्थात् सौ वर्ष के प्रयत्न से अन्त में यह निश्चित हुआ कि यह शिलालेख कलिंगाधिपति महामेघबाहन चक्रवर्ती जैन सम्राट् महाराजा खारवेल का है।

सचमुच बड़े शोक की बात है कि जिस धर्म से यह शिलालेख सम्बन्ध रखता है, जिस धर्म की महत्ता को बतानेवाला यह लेख है, जिस धर्म के गौरव के प्रदर्शन करनेवाला यह शिलालेख है उस जैन धर्मवालों ने आज तक कुछ भी नहीं किया। जिस महत्वपूर्ण विषय की ओर ध्यान देने की अत्यन्त आवश्यकता थी वह विषय उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया। क्या वास्तव में जैनियों ने इस विषय की ओर आँख उठाकर देखा तक नहीं? क्या कृतज्ञता प्रकट करना वे भूल ही गये? जहाँ चन्द्रगुप्त और सम्प्रति राजा के लिए जैन ग्रन्थकारों ने पोथे के पोथे लिख डाले वहाँ क्या श्वेताम्बर और क्या दिगम्बर किसी भी आचार्य ने इस नरेश के चारित्र की ओर प्रायः क़लम तक नहीं उठाई कि

जिसके आधार से आज हम जनता के सामने खारवेल का कुछ वर्णन रख सकें। क्या यह बात कम लज्जास्पद है?

उधर आज जैनेतर देशी और विदेशी पुरातत्वज्ञ तथा इतिहास प्रेमियों ने साहित्य संसार में प्रस्तुत लेख के सम्बन्ध में धूम मचादी है। उन्होंने इसके लिए हज़ारों रुपयों को खर्चा। अनेक तरह से परिश्रम कर पता लगाया। पर जैनी इतने बेपरवाह निकले कि उन्हें इस बात का भान तक नहीं। आज अधिकांश जैनी ऐसे हैं जिन्होंने कान से खारवेल का नाम तक नहीं सुना है। कई अज्ञानी तो यहाँ तक कह गुज़रते हैं कि गई गुज़री बातों के लिए इतनी सरपच्ची तथा मगज़मारी करना व्यर्थ है। बलिहारी इनकी बुद्धि की! वे कहते हैं इस लेख से जैनियों को मुक्ति थोड़े ही मिल जायगी। इसे सुनें तो क्या और पढ़ें तो क्या? और न पढ़ें तो क्या होना-हवाना! अर्वाचीन समय में हमें अपने धर्म का कितना गौरव रह गया है इस बात की जाँच ऐसी लच्चर दलीलों से अपने आप हो जाती है। जिस धर्म का इतिहास नहीं उस धर्म में जान नहीं। क्या यह मर्म कभी भूला जा सकता है? कदापि नहीं।

सज्जनो! सत्य जानिये। महाराज खारवेल का लेख जो अति प्राचीन है तथा प्रत्यक्ष प्रमाण भूत है जैन धर्म के सिद्धान्तों को पुष्ट करता है। यह जैन धर्म पर अपूर्व प्रभाव डालता है। यह लेख भारत के इतिहास के लिए भी प्रचुर प्रमाण देता है। कई बार

लोग यह आक्षेप किया करते हैं कि जिस प्रकार बौद्ध और वेदान्त मत राजाओं से सहायता प्राप्त करता था तथा अपनाया जाता था उसी प्रकार जैन धर्म किसी राजा की सहायता नहीं पाता था न यह अपनाया जाता था या जैन धर्म सारे राष्ट्र का धर्म नहीं था, उनको इस शिलालेख से पूरा उत्तर प्रत्यक्षरूप से मिल जाता है और उन के बोलने का अवसर नहीं प्राप्त हो सकता।

भगवान महावीर के अहिंसा धर्म के प्रचारकों में शिलालेखक सब से प्रथम खारवेल का ही नामउपस्थित करते हैं। महाराजा खारवेल कट्टर जैनी था। उसने जैन धर्म का प्रचुरता से प्रचार किया। इस शिलालेख से ज्ञात होता है कि आप चैत्रवंशी थे। आपके पूर्वजों को महामेघवहान की उपाधि मिली हुई थी। आपके पिता का नाम बुद्धराज तथा पितामह का नाम खेमराज था। महाराजा खारवेल का जन्म २६७ ई० पूर्व सन्में हुआ। पंद्रह वर्ष तक आपने बालवय आनंदपूर्वक बिताते हुए आवश्यक विद्याध्ययन भी कर लिया तथा नौ वर्ष तक युवराज रह कर राज्य का प्रबंध आपने किया था। इस प्रकार २४ वर्षकी आयु में आपका राज्याभिषेक हुआ। १३ वर्ष पर्यन्त आपने कलिंगाधिपति रह कर सुचारु रूप से शासन किया। अन्तमें अपने राज्य कालमें दक्षिण से लेकर उत्तर लों राज्य का विस्तार कर आपने सम्राट् की उपाधि भी प्राप्त की थी आपने अपना जीवन धार्मिक कार्य करते हुए बिताया। अन्त में आपने समाधि मरण द्वारा उच्च गति प्राप्त की। ऐसा शिलालेख से मालूम होता है।

यह शिलालेख कालिंग देश, जिसे अब सब उड़ीसा कह कर पुकारते हैं, के खण्डगिरि (कुमार पर्वत) की हस्ती नाम्नी गुफा से मिला था। यह शिला लेख १५ फुट के लगभग लम्बा तथा ५ फीट से अधिक चौड़ा है।

यह शिलालेख १७ पंक्ति में लिखा हुआ है। इस शिलालेख की भाषा पाली भाषा से मिलती है। यह शिलालेख कई व्यक्तियों के हाथ से खुदवाया हुआ है। पूरे सौ वर्ष के परिश्रम के पश्चात् इसका समय समय पर संशोधन भी किया है। अन्तिम संशोधन पुरातत्वज्ञ पं० सुखलालजीने किया है। पाठकों के अवलोकनार्थ हम उस लेख की नकल यहाँ पर दे के साथ में उसका हिन्दी अनुवाद भी सरल भाषा में पंक्ति वार दे देते हैं आशा है कि इसे मननपूर्वक पढ़कर अपने धर्म के गौरव को भली भाँति से समझेंगे।

कलिङ्गाधिपति महामेघवाहन चक्रवर्ती महाराजा खारवेल के प्राचीन शिलालेख की

"नकल"

(श्रीमान् पं० सुखलालजी द्वारा संशोधित)

विशेष ज्ञातव्य—असल लेख में जिन मुख्य शब्दों के लिए पहले स्थान छोड़ दिया गया था, उन शब्दों को यहाँ बड़े टाइपों में छपवाया है। विराम चिह्नों के लिए भी स्थान रिक्त है। वह खड़ी पाई से बतलाये गये हैं। गले हुए अक्षर कोष्टबद्ध हैं और उड़े हुए अक्षरों की जगह बिन्दियों से भरी गई है।

[प्राकृत का मूल पाठ]

(पंक्ति १ ली)—नमो अराहंतानं [।] नमो सवसिधानं [।] **ऐरेन** महाराजेन **माहामेघवाहनेन चेतिराज** वसवधनेन पसथ-सुभलखनेन चतुरंतलुठितगुनोपहितेन कलिंगाधिपतिना **सिरि खारवेलेन** १

संस्कृतच्छाया।

१ नमोऽर्हद्भ्यः [।] नमः सर्वसिद्धेभ्यः [।] एलेन महाराजेन महा-मेघवाहनेन चेदिराज वंशवर्धनेन प्रशस्तशुभलक्षणेन चतुरन्त–लुठित-गुणोपहितेन कलिङ्गाधिपतिना श्री क्षारवेलेन

(पंक्ति २ री)-पंदरसवसानि सिरि-कडार-सरीरवता कीडिता कुमारकीडिका [।] ततो लेखरूपगणना-ववहार-विधि-विसारदेन सवविजावदातेन नववसानि योवरजं पसासितं [।] संपुण-चतु-वीसति-वसो तदानि वधमान-सेसवो वेनाभिविजयोततिये २.

(पंक्ति ३ री)-कलिंगराजवंस-पुरिसयुगे महाराजाभिसेचनं पापुनाति [।] अभिसितमतो च पधमे वसे वात-विहत-गोपुर-पाकार-निवेसनं पटिसंखारयति [।] कलिंगनगरि [f] खबीर-इसि-ताल-तडाग-पाडि यो च बंधापयति [।] सवुयान-पटिसंठपनं च ३.

(पंक्ति ४ थी)-कारयति [।।] पनतीसाहि सतसहसेहि पकतियो च रंजयति [।] दुतिये च वसे अचितयिता सातकंणि

२ पञ्चदशवर्षाणि श्रीकडारशरीरवता क्रीडिताः कुमारक्रीडाः [।] ततो लेख्यरूपगणनाव्यवहारविधि विशारदेन सर्वविद्यावदातेन नववर्षाणि यौवराज्यं प्रशासितम् [।] सम्पूर्ण चतुर्विंशतिवर्षस्तदानी वर्धमानशैशवो वेनाभिविजयस्तृतीये

३ कलिङ्गराजवंश-पुरुष-युगे महाराज्याभिषेचनं प्राप्नोति [।] अभिषिक्तमात्रश्च प्रथमे वर्षे वातविहतं गोपुर-प्राकार-निवेशनं प्रतिसंस्कारयति [।] कलिङ्गनगर्याम् खिबीरर्षि* तल्ल-तडाग-पालिश्च बन्धयति [।] सर्वोद्यानप्रतिसंस्थापनश्च

४ कारयति [।।] पञ्चत्रिंशद्भिः शतसहस्रैः × प्रकृतीश्च रञ्जयति [।]

* ऋषि-खिवीरस्य तल्ल-तडागस्य

× पञ्चत्रिंशच्छत-सहस्रैः प्रकृतीः परिच्छिद्य परिगणय्य इत्येदर्थे तृतीया ।

पछिमदिसं हय–गज–नर–रथ–बहुलं दंडं पठापयति [।] कन्हवेंनां गताय च सेनाय वितासितं मुसिकनगरं [।] ततिये पुन वसे ४.

(पंक्ति ५ वी)–गंधव–वेदबुधो दंप–नत–गीतवादित संदसनाहि उसव–समाज कारापनाहि च कीडापयति नगरिं [।] तथा चवुथे वसे विजाधराधिवासं अहत–पुवं कालिंग पुवराज–निवेसितं······वितध–मकुटसबिलमढिते च निखित–छत– ५.

(पंक्ति ६ ठी)–भिंगारे हित–रतन–सापतेये सवरठिक **भोजके** पादे वंदापयति [।] पंचमे च दानी. वसे **नंदराज** –ति–बस–सत–ओघाटित' तनसुलिय–वाटा पनाडिं नगरं पवेस [य] ति [।] सो······भिसितो च राजसुय [°] संदश–यंतो

द्वितीये च वर्षे अचिन्तयित्वा सातकर्णिं पश्चिमदेश × हय–गज–नर–रथ–बहुलं दण्डं प्रस्थापयति [।] कृष्णवेणां गतया च सेनया वित्रासितं मूषिकनगरम् [।] तृतीये पुनर्वर्षे

५ गान्धर्ववेदबुधो दम्भ*–नृत–गीतवादित्र–सन्दर्शनैरुत्सव–समाज–कारणैश्च क्रीडयतिनगरीम [।] तथा चतुर्थे वर्षे विद्याधराधिवासम् अहतपूर्वं कालिङ्ग–पूर्वराजनिवेशितं······वितथ–मकुटान् सार्धित-बिलमांश्च निक्षिप्त–छत्र–

६ भृङ्गारान् हृत–रत्न–स्वापतेयान् सर्वराष्ट्रिक भोजकान् पादावभिवादयते [।] पञ्चमे चेदानीं वर्षे नन्दराजस्य त्रि–शत–वर्ष अवघट्टितां तनसुलिवाटत् प्रणालीं नगरं प्रवेशयति [।] सो (ऽपि च वर्षे षष्ठे) ऽभिषिक्तश्च राजसूयं सन्दर्शयन सर्व–कर–पणम्

× दिक्शब्दः पालीप्राकृते विदेशार्थोऽपि

* दम्प = डफ इति भाषायाम् ?

सव-कर-वणं ६.

(पंक्ति ७ वीं) -अनुगह-अनेकानि सतसहसानि विसजति पोरं जानपदं [।] सतमं च वसं पसासतो वजि-रघरव [ँ] ति-घुसित-घरिनीस [-मतुकपद -पुंना [ति ? कुमार]…… ……[।] अठमे च वसे महता + सेना……-गोरधगिरिं ७.

(पंक्ति- ८ वीं तपाघा)यिता राजगहं उपपीडापयति [।] एतिनं च कंमापदान-संनादेन संवित-सेन-वाहनो विपमुंचितु मधुरं अपयातो यवनराज डिमित………………[मो ?] यछति [वि]……पलव…८.

(पंक्ति ९ वीं)-कपरुखे हय-गज-रध-सह-यंते सवघरा-वास-परिवसने स-अगिणठिया [।] सव-गहनं च कारयितुं

---

७ अनुग्रहाननेकान् शतसहस्रं विसृजति पौराय जानपदाय [।] सप्तमं च वर्षं प्रशसतो वज्रगृहवती घुषिता गृहणी [सन्-मातृकपदं प्राप्नोति ?] [कुमारं]… [।] अष्टमे च वर्षे महता × सेना…… गोरथ गिरिं

८ घातयित्वा राजगृहमुपपीडयति [।] एतेषां च कर्मावदान-संनादेन सवीत-सैन्य वाहनो विप्रमोक्तुं मथुरामयातो यवनराजः डिमित ……[मो ?] यच्छति [वि]……पल्लव…

९ कल्पवृक्षान् हयगजरथान् सयन्तृन् सर्वगृहावास-परिवसनानि साग्निष्टिकानि [।] सर्वग्रहणं च कारयितुं ब्राह्मणानां जातिं परिहारं ददाति [।] अर्हतः………व……न…गिया [?]

× महता = महात्मा ? सेनाग्रः समस्यन्त-पदस्य विशेषणं वा ।

+ नवमे वर्षे इत्येतस्य मूलपाठो नष्टोन्तार्हताक्षरेषु ।

बम्हणानं जातिं परिहारं ददाति [।] अरहतो·········व···न ···गिय ६.

(पंक्ति १० वीं)···[का] . ि . मान [ति]* रा [ज]–संनिवासं महाविजयं पासादं कारयति अठतिसाय सतसहसेहि [।] दसमे च वसे दंड–संधी–साम मयो भरध–वस–पठानं महि––जयनं···ति कारापयति···········[निरितय उयातानं च मनिरतना [नि] उपलभते [।] १०.

(पंक्ति ११ वीं)·········मंडं च अवराजनिवेसितं पीथुड–गदभ–नंगलेन कासयति [ि जनस दंभावनं च तेरसवस–सतिक [˙]–तु भिदति तमरदेह–संघातं [।] वारसमे च वसे···हस···°के. ज. सवसेहि वितासयति उतरापथ–राजानो···

(पंक्ति १२ वीं)·········मगधानं च विपुलं भयं जनेतो

१०···[क] . ि. मानति [?] राजसन्निवासं महाविजयं प्रासादं कारयति अष्टत्रिंशता शतसहस्त्रैः [।] दशमे च वर्षे दण्डसन्धि–साममयो भारतवर्ष-प्रस्थानं महीजयनं··ति कारयति·········[निरत्या ?] उद्यातानां च मणिरत्नानि उपलभते [।]

११···× ...... मण्डं च अपराजनिवेशितं पृथुल–गर्दभ-लाङ्गलेन कर्षयति जिनस्य दम्भापनं त्रयोदशवर्ष–शतिकं तु भिनत्ति तामर–देहसंघातम् [।] द्वादशे च वर्षे···········भिः वित्रासयति उत्तरापथराजान्

१२············मगधानांच विपुलं भयं जनयन् हस्तिनः सुगाङ्गेय प्राययति [।] मागधंच र जानं बृहस्पतिमित्रं पादावभिवादयते [।]

---

* 'मानवी' भी पढ़ा सकता है ।

× एकादशे वर्षे इत्येतस्य मूलपाठो नष्टो गलितशिलायाम् ।

हथी सुगंगीय [˙] पाययति [।] मागधं च राजानं वहसतिमितं पादे वंदापयति [।] नंदराज-नीतं च कालिंगजिनं संनिवेसं ······ गह-रतनान पडिहारेहि अंगमागध-वसुं च नेयाति [।] १२.

(पंक्ति १३ वीं) ·········तु [˙] जठरलिखिल-बरानि सिहरानि नीवेसयति सत-वेसिकनं परिहारेन [।] अभुतमछरियं च हथि-नावन परीपुरं सव-देन हय-हथी-रतना [मा] निकं पंडराजा चेदानि अनेकानि मुतमणिरतनानि अहरापयति इध सतो

(पंक्ति १४ वीं) ···········सिनो वसीकरोति [।] तेरसमे च वसे सुपवत-विजयचक-कुमारीपवते अरहिते [य ?]* प-खीण-संसितेहि कायनिसीदीयाय याप-ञावकेहि राजभितिनि

नन्दराजनीतंच कालिङ्गजिन-सन्निवेशं·········गृहरत्नानां प्रतिहारैराङ्ग मागध-वसूनि च नाययति [।]

१३·······तु जठरोल्लिखितानि वराणि शिखराणि निवेशयति शतवैशिकानां परिहारेण [।] अद्भुतमाश्चर्यञ्च हस्तिनावाँ पारिपूरम सर्वदेयं हय-हस्ति-रत्न-माणिक्यं पाण्डवराजात् चेदानीमनेकानि मुक्ता-मणिरत्नानि आहारयति इह शक्तः [।]

१४··········सिनो वशीकरोति [।] त्रयोदशे च वर्षे सुप्रवृत्त-विजयचक्रे कुमारी-पर्वतेऽर्हिते प्रक्षीण + -संसृतिभ्य कायिकनिषीद्यां यापज्ञापकेभ्यः राज-भृतीश्चीर्णव्रताः [एव ?] शासिताः [।] पूजायां रतोपासेन खारवेलेन श्रीमता जीव देह-श्रीकता परीक्षिता [।]

---

* पंक्ति के नीचे 'य' ऐसा एक अक्षर मालूम होता है।

+ यप-क्षीण इति वा।

चिनवतानि वसासितानि [।] पूजाय रत-उवास-खारवेल-सिरिना जीवदेह-सिरिका परिखिता [।]

(पंक्ति १५ वीं)......[सु] कतिसमणसुविहितानं (नुं-?) च सत-दिसानं [नुं ?] ञानिनं तपसि-इसिनं संघियनं [नुं ?] [;] अरहत-निसीदिया समीपे पभारे वराकर-समुथपिताहि अनेक योजनाहिताहि प. सि. ओ...सिलाह सिंहपथ-रानिसि-[.] धुडाय निसयानि १५.

(पंक्ति १६ वीं)...........घंटालक्तो× चतरे च वेडू-रियगभे थंभे पतिठापयति [,] पान-तरिया सत सहसेहि [।] मुरिय-काल वोछिंनं च चोयठिअंग-सतिकं तुरियं उपादयति [।] खेमराजा स वढराजा स भिखुराजा धमराजा पसंतो सुनंतो अनुभवंतो कलाणानि १६.

१५.....सुकृति-श्रमणानां सुविहितानां शतदिशानां तपस्विऋषिणां सङ्घिनां [।] अर्हन्निषीद्याः समीपे प्राग्भारे वराकरसमुत्थापिताभिरनेक-योजनाहृताभि.........शिलाभिः सिंहप्रस्थीयायै रात्र्यै सिन्धुडायै निश्रयाणि

१६.........घण्टालक्षः [?], चतुरश्र च वैदूर्यगर्भान् स्तम्भान् प्रतिष्ठापयति [,] पञ्चसप्तशतसहस्त्रैः [।] मौर्य कालव्यवच्छिन्नञ्च चतुःषष्टिकाङ्गसप्तिकं तुरीयमुत्पादयति [।] क्षेमराजः स वर्द्धराजः स भिक्षुराजो धर्मराजः पश्यन् शृण्वन्ननुभवन् कल्याणानि

× अथवा-घंटालीएह.

(पंक्ति १७ वीं)········गुण-बिसेस-कुसलो सव-पांसडपूजको सव-देवायतनसंकारकारको [अ] पतिहत चकिवाहिनिबलो चकधुरो गुतचको पवत-चको राजसि-वस-कुलविनिश्रितो महा-विजयो राजा खारवेल-सिरि १७.

१७·········गुण-विशेष-कुशलः सर्व-पाषण्डपूजकः सर्व-देवायतनसंस्कारकारकः [अ] प्रतिहत चक्रि-वाहिनि-बलः चक्रधुरो गुप्त-चक्रः प्रवृत्त-चक्रो राजर्षिवंश-कुलविनिःसृतो महाविजयो राजा खारवेलश्रीः

शिलालेख का भाषानुवाद ।

(श्रीमान् पं० सुखलालजी का 'गुजराती भाषानुवाद' से)

(१) अरिहन्तों को नमस्कार, सिद्धों को नमस्कार, ऐर (ऐल) महाराजा महामेघवाहन (मरेन्द्र) चेदिराजवंशवर्धन, प्रशस्त, शुभ लक्षण युक्त, चतुरन्त व्यापि गुण युक्त कलिङ्गाधिपति श्री खारवेलने

(२) पन्द्रह वर्ष पर्यन्त श्री कडार (गौर वर्ण युक्त) शारीरिक स्वरूपवालेने बाल्यावस्था की क्रीडाएँ की। इसके पीछे लेख्य (सरकारी फरियादनामा आदि) रूप (टंकशाल) गणित (राज्य की आय व्यय तथा हिसाब) व्यवहार (नियमोपनियम) और विधि (धर्मशास्त्र आदि) विषयों में विशारद हो सर्व विद्यावदात (सर्व विद्याओं में प्रबुद्ध) ऐसे (उन्होंने) नौ वर्ष पर्यन्त युवराज पद पर रह कर शासन का कार्य किया। उस समय पूर्ण चौबीस वर्ष की आयु में जो कि बालवयसे वर्द्धमान और जो अभिविजय में वेन (राज) है ऐसे वह तीसरे

(३) पुरुष युग में (तीसरी पुश्त में) कलिंग के राज्यवंश में राज्याभिषेक पाये। अभिषेक होने के पश्चात् प्रथम वर्ष में प्रबल वायु उपद्रव से टूटे हुए दरवाज़े वाले किले का जीर्णोद्धार कराया। राजधानी कलिंग नगर में ऋषि खिबीर के तालाब और किनारे बँधवाए। सब बगीचों की मरम्मरत

(४) करवाई। पैंतीस लाख प्रकृति (प्रजा) का रञ्जन किया। दूसरे वर्ष में सातंकणि (सातंकर्णि) की किञ्चित् भी परवाह न कर के पश्चिम दिशा में चढ़ाई करने को घोड़े, हाथी, रथ और पैदल सहित बड़ी सेना भेजी। कन्हवेनों (कृष्णवेणा) नदी पर पहुँची हुई सेना से मुसिकभूषिका नगर को त्रास पहुँचाया। और तीसरे वर्ष में गंधर्व वेद के पंडित ऐसे (उन्होंने) दंप (डफ?) नृत्य, गीत, वादित्र के संदर्शन (तमाशे) आदि से उत्सव समाज (नाटक, कुश्ती आदि) करवा कर नगर को खेलाया; और चौथे वर्ष में विद्याधराधिवासे को केगिस को कलिङ्ग के पूर्ववर्ती राजाओंने बनवाया था और जो पहिले कभी भी पड़ा नहीं था। अर्हत पूर्व का अर्थ नया चढ़ा कर यह भी होता है............जिस के मुकुट व्यर्थ हो गये हैं। जिन के कवच बख्तर आदि काट कर दो टुकड़े कर दिये गये हैं, जिन के छत्र काट कर उडा दिये गये हैं

(६) और जिन के शृङ्गार (राजकीय चिह्न, सोने चांदी के लोटे भारी) फेंक दिये गये हैं, जिन के रत्न और स्वापतेय (धन) छीन लिया गया है ऐसे सब राष्ट्रीय भोजकों को अपने चरणों में झुकाया, अब पांचवे वर्ष में नन्दराज्य के एक सौ और तीसरे वर्ष (संवत्) में खुदी हुई नहर को तनसुलिय के रस्ते राजधानी के अन्दर ले आए। अभिषेक से छटवें वर्ष राजसूय यज्ञ के उजवते हुए। महसूल के सब रुपये

(७) माफ किये वैसे ही अनेक लाखों अनुग्रहों पौर जनपद को बक्सीष किये। सातवें वर्ष में राज्य करते आप की महारानी वज्रधरवाली धूषिता (Demetrios) ने मातृपदे को प्राप्त किया (१) (कुमार १)......आठवें वर्ष में महा + + + सेना......गोरधगिरि[1]

(८) को तोड़ कर के राजगृह (नगर) को घेर लिया जिसके कार्यों से अवदात (वीर कथाओं का संनाद से युनानी राजा (यवन राजा) डिमित (अपनी सेना और छकड़े एकत्र कर मथुरा में छोड़ के पीछा लौट गया ......नौवें वर्ष में (वह श्री खारबेलने) दिये हैं............ पल्लव पूर्ण

(८) कल्पवृक्षो! अश्व हस्ती रथों (उनको) चलाने वालों के साथ वैसे ही मकानों और शालाओं अग्निकुण्डों के साथ यह सब स्वीकार करने के लिये ब्राह्मणों को जागीरें भी दीं अर्हत का .....

(१०) राजभवन रूप महाविजय (नाम का) प्रासाद उसने अड़तीस लाख (पण) से बनवाया। दसवें वर्ष में दंड, संधी साम प्रधान (उसने) भूमि विजय करने के लिये भारत वर्ष में प्रस्थान किया......जिन्हों के ऊपर (आपने) चढ़ाई करी उन से मणिरत्न वगैरह प्राप्त किये।

(११)......(ग्यारहवें वर्ष में) (किसी) बुराराजा ने बनवाया मेड (मडिलाबाजार) को बड़े गदहों से हलसे खुदवा

दिया, लोगों को धोखावाजी से ठगनेवाले ११३ वर्ष के तमर का देहसंधान को तोड़ दिया। बारहवें वर्ष में......री उत्तरापथ में राजाओं को बहुत दुःख दिया।

(१२)......और मगध वासियों को बड़ा भारी भय उत्पन्न करते हुए हस्तियों को सुगंग (प्रासाद) तक ले गया और मगधाधिपति बृहस्पति को अपने चरणों में झुकाया। तथा राजा-नंद दास ले गई कलिंग जिन मूर्त्ति को......और गृहरत्नों को लेकर प्रतिहारोंद्वारा अंग मगध का धन ले आया।

(१३)......अन्दर से लिखा हुआ (खुदे हुए) सुन्दर शिखरों को बनवाया और साथ में सौ कारीगरों को जागीरें दीं अद्भुत और आश्चर्य (हो ऐसी रीतिसे) हाथियों के भरे हुए जहाज नजराना हो। हस्ती रत्न माणिक्य, पाडयराज के यहाँ से इस समय अनेक मोती मानिक रत्न लूट करके लाए ऐसे वह सक्त (लायक महाराजा)।

(१४)......सब को वश किये। तेरहवें वर्ष में पवित्र कुमारी पर्वत के ऊपर जहाँ (जैन धर्म का) विजय धर्म चक्र सुप्रवृत्तमान है। प्रक्षीण संसृति (जन्म मरणों को नष्ट किये) काय निषीदी (स्तूप) ऊपर (रहनेवाले) पाप को बतानेवाले (पाप ज्ञापकों) के लिये व्रत पूरे हो गये पश्चात् मिलनेवाले राज (विभूतियाँ कायम कर दीं। (शासनो बन्ध दिये) पूजा में रक्त उपासक खारवेल ने जीव और शरीर की—श्री की परीक्षा करली (जीव और शरीर परीक्षा कर ली है)।

(१५)··· ··सुकृति श्रमणे सुविहित शत दिशाओं के ज्ञानी-तपस्वी ऋषि संघ के लोगों को······अरिहन्त के निषीदीका पास पहाड़ के ऊपर उम्दा खानों के अन्दर से निकाल के लाए हुये-अनेक योजनों से लाए हुए···सिंह प्रस्थवाली रानी सिन्धुला के लिये निःश्रय······

(१६)······घंटा संयुक्त (···) वैडुर्य रत्नवाले चार स्तम्भ स्थापित किये। पचहत्तर लाख के व्यय से मौर्यकाल में उच्छेदित हुए हुए चौसठ (चौसठ अध्यायवाले) अंग सप्तिकों का चौथा भाग पुनः तैयार करवाया। यह खेमराज वृद्धराज भिक्षुराज धर्मराज कल्यान को देखते और अनुभव करते

(१७)······छ गुण विशेष कुशल सर्व पंथो का आदर करनेवाला सर्व (प्रकार के) मन्दिरों की मरम्मत करवानेवाला अस्खलित रथ और सेना वाला चक्र (राज्य) के धुरा (नेता) गुप्त (रक्षित) चक्रवाला प्रवृतचक्रवाला राजर्षि वंश विनिःसृत राजा खारवेल

यूरोपीय और भारतीय पुरातत्वज्ञों से केवल खारवेल का ही शिलालेख उपलब्ध नहीं हुआ है वरन् दूसरे अनेक लाभ हमें उनकी खोजों से हुए हैं। उदयगिरि और खण्डगिरि की हस्ति गुफा के अतिरिक्त अनन्त गुफा, रानीगुफा, सर्पगुफा, व्याघ्रगुफा, शतधरगुफा, शतचक्रगुफा, हाँसीगुफा और नव मुनि गुफा का भी साथसाथ पता लगा है। किंवदन्ति से ज्ञात होता है कि

इस पर्वत श्रेणी में सब मिलाकर ७५२ गुफाएँ थीं जिन में से कई तो टूटफूट कर नष्ट हो गईं। पर इस समय भी अनेक छोटी छोटी गुफाएँ विद्यमान हैं। इनमें जैन साधु तथा बौद्ध भिक्षु निवास किया करते थे। इसे से इस बात का पता लगता है कि प्राचीन समय में कई मुनि पहाड़ों की कन्दराओं में निवास करते थे। तथा वे एकान्त स्थान में निस्तब्धता के साम्राज्य में अपना आत्महित साधन करने में तत्पर रहते थे।

बाबू मनमोहन गङ्गोली बंगाल निवासीने इन गुफाओं की पूरी तरह से खोजना करी तथा इस अनुसंधान का वर्णन एक पुस्तक में लिखा है जो बंगला भाषा में छपकर प्रकाशित हो चुका है। इस पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है कि इन गुफाओं का निर्माण ई. स. के पूर्व की तीसरी और चौथी सदी में हुआ है। कई गुफाओं तो इस से भी पहले बनी मालूम होती हैं। कई कई गुफ़ाओं दुमञ्जली हैं। इन में से कई तो नष्ट हो गई हैं तथापि भारत की प्राचीन शिल्पविद्या का प्रदर्शन कराने में समर्थ हैं। गुफ़ाओं की दिवारों पर चौवीसों तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ खुदी हुई हैं तथा उनके नीचे उनके चिह्न भी खुदे हुए हैं।

हस्तिगुफा में महाराजा खारवेल का शिलालेख खुदा हुआ है। मांचीपुर गुफा में श्री पार्श्वनाथ स्वामी का सम्पूर्णजीवन चारित्र खुदा हुआ है। गणेशगुफा में भी खोज करने पर पार्श्वनाथ स्वामी का कुछ कछ जीवन वृतान्त खुदा हुआ मिला है।

रानी गुफा की खोज से मालूम हुआ है कि एक शिलालेख में, जो रानी घूषि का खुदाया हुआ है, खारवेल को चक्रवर्ती लिखा है। एक गुफा के शिलालेख में यह बात खुदी हुई पाई गई है कि वहाँ पर जैन मुनि शुभचन्द्र और कूलचन्द्र रहते थे। यह लेख विक्रम की दसवीं सदी का है। एक गुफा में महाराजा उद्योतन केसरी के समय का लेख है इस के अलावा भी कलिंग की प्राचीनता और गुफाओं का वर्णन, मुनि जिनविजयजी की प्रकाशित की हुई "प्राचीन जैन लेख संग्रह" नामक पुस्तक के प्रथम भाग केविस्तृत उपोद्घात के पठन से मालूम हो सकता है।

कलिङ्गाधिपति महामेघवाहन चक्रवर्ती महाराजा खारवेल के शिलालेखने आज युरोपीय और भारतीय पुरातत्वज्ञों के कार्य में चहल पहल तथा धूम मचा दी है। लगभग एक सदी के कठिन परिश्रम के पश्चात् उन्होंने निश्चय किया है कि कलिङ्गाधिपति चक्रवर्ती महाराजा खारवेल जैन सम्राट था और उसने जैन धर्म का खूब प्रचार भी किया था। यह ध्वनि जब कतिपय सोए हुए जैनियों के (व्यक्तियों के) कानों में पड़ी तब उन विद्वानोंने भी अपनी निन्द्रा त्यागदी। उन्होंने अपने बंद भण्डारों के ताले खोले। पन्नों को ऊथल पुथल करना प्रारम्भ किया तो अहोभाग्य से कुछ पन्ने ऐसे भी मिल गये कि जिन में खारवेल के शिलालेख से सम्बन्ध रखनेवाली बातें मिलती थीं।

विक्रम की दूसरी शताब्दि में विख्यात आचार्य श्री स्कंदल सूरीजी के शिष्य आचार्य श्री हेमवंतसूरीने संक्षेप में एक स्थविरावली नामक पुस्तक लिखी थी उसमें उन्होंने प्रकट किया है कि मगध[1] का राजा नन्द, कलिंग का राजा भिक्षुराज[2] तथा कुमार नामक युगल[3] पर्वत था इस स्थविरावली में:—

१ मगध का राजा वही नंदराज है जिसका उल्लेख खारवेल के शिलालेख में हुआ है। उसमें इस बात का भी उल्लेख है कि नन्दराजा कलिंग देश से जिनमूर्ति तथा मणि रत्न आदि ले गया था।

२ कलिंग का राजा वही भिक्षुराज बताया गया हैं जिसका वर्णन खारवेल के शिलालेख में आया है। उस में इस बात का भी जिक्र है कि भिक्षुराज ने भारत विजय कर मगध पर चढ़ाई की थी और जो मूर्ति तथा मणि रत्न नंदराजा ले गया था वे वापस ले आया। वह जिनमूर्ति पीछी कलिंग में पहुँच गई।

३ कुमार पर्वत (जो आजकल खण्डगिरि कहलाता है) का उल्लेख शिलालेख के कुमार पर्वत से मिलता है। यह वही पहाड़ी

१ जसभद्दो मुणि पवरो। तप्पय सोहं करोपरो जाओ।
अट्ठमणंदो मगहे। रज्जं कुणइ तया अइलोहो। ६।

२ सुट्ठिय सुपडिबुद्धे। अज्ज दुन्नेवि ते नमंसामि।
भिक्खुराय कलिंगा। हिवेण सम्मणि जिट्ठे। १०।

३ जिण कप्पिपरिकम्म। जो कासी जस्स संथवमकासी।
कुमारगिरिम्मि सुहत्थी। तं अज्ज महगिरि वंदे। १२।

है जिसके पठार पर एक विराट् साधु सम्मेलन हुआ था। सैकड़ों मीलों से जैन साधु तथा ऋषि इस पवित्र पर्वत पर एकत्रित हुए थे।

जैन लेखकों ने महाराजा खारवेल का इतिहास कलिंगपति महाराजा सुलोचन से प्रारम्भ किया है। परन्तु इतिहासकारों ने प्रारम्भ में कलिंग के एक सुरथ नाम राजा का उल्लेख किया है। कदाचित् सुलोचन का ही दूसरा नाम सुरथ हो। कारण इन दोनों के समय में अन्तर नहीं है।

भगवान महावीर स्वामी के समय में कलिंग देश की राजधानी कंचनपुर में थी और महाराजा सुलोचन राज्य करता था। सुलोचन नरेश की कन्या का विवाह वैशाला के महाराजा चेटक के पुत्र शोभनराय से हुआ था। जिस समय महाराजा चेटक और कौणिक में परस्पर युद्ध छिड़ा तो कौणिक-नृपति ने वैशाला नगरी का विध्वंश कर दिया और चेटक राजा समाधी मरण से स्वर्गधाम को सिधाया! अतः शोभनराय अपने श्वसुर महाराजा सुलोचन के यहाँ चला गया। सुलोचन राजा अऊत था अतएव उसने अपना सारा साम्राज्य शोभनराय के हस्तगत कर दिया। सुलोचन नृप ने इस वृद्ध अवस्था में निवृति मार्ग का अवलम्बन कर कुमारगिरि तीर्थ पर समाधी मरण प्राप्त किया। वीरात १८ वें वर्ष में शोभनराय कलिंग की गद्दी पर उपरोक्त कारण से बैठा। यह चेत (चैत्र) वंशीय कुलीन राजा था। यह जैन धर्मावलम्बी था। इसने कुमारी पर्वत पर अनेक मन्दिर बनवाए। इसने अपने

राज्य का भी खूब विस्तार किया तथा प्रजा की आवश्यकताओं को उचित रूप से पूर्ण कर शान्तिपूर्वक राज्य किया।

महाराजा शोभनराय की पाँचवीं पीढ़ी में वीरात् १४६ वर्ष में चण्डराय नामका कलिंग का राजा हुआ था। उस समय मगध प्रान्त का राजा नन्द था। नन्द नरेश ने कलिङ्ग देश पर चढ़ाई की। आक्रमण करके वह मणियाँ, माणिक आदि बटोर कर मगध में ले जाता था। कुमारिगिरि पर्वत पर जो मगधाधीश श्रेणिक का बनवाया हुआ उत्तङ्ग जिनालय था उसमें स्वर्णमय भगवान ऋषभदेव की मूर्त्ति स्थापित की हुई थी। नन्द नरेश इस मूर्त्ति को भी उठा कर ले आया था। इस समय के पश्चात् खारवेल से पहले ऐसा कोई कलिंग में राजा नहीं हुआ जो मगध के राजा से अपना बदला ले। यदि सबल राजा कलिंग पर हुआ होता तो इससे पहिले मूर्त्ति को अवश्य वापस ले आता।

शोभनराय की आठवीं पेढी में खेमराज नामक राजा कलिंग देश का अधिकारी हुआ। इस समय मगध की गद्दी पर अशोक राज्य करता था। अशोक नृप ने भारत की विजय करते हुए ई. स. २६२ वर्ष पूर्व में कलिंग प्रान्त पर धावा बोल दिया। उस समय भी कलिंग राजाओं की वीरता की धाक चहुँ ओर फैली हुई थी। कलिंग देश को अपने अधीन करना अशोक के लिए सरल नहीं था। दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। अशोक की असंख्य सेना के आगे कलिंग की सेना ने मस्तक नहीं झुकाया। दोनों ओर के वीर पूरी तरह से अड़े हुए थे। रक्त

की नदियाँ बहने लगीं। कलिंग वालों ने खूब प्रयत्न किया पर अन्त में अशोक की ही विजय हुई। कलिंग देश पर अशोक का अधिकार होते ही बौद्ध धर्म इस प्रान्त में चमकने लगा। अशोक बौद्ध धर्म के प्रचार करने में मशगूल था अतएव जैन धर्म की जगह धीरे धीरे बौद्ध धर्म लेने लगा। ब्राह्मण धर्म वाले कलिंग को अनार्य देश कहते थे इस कारण अशोक के आने के पहिले कलिंग वासी सब जैन धर्मावलम्बी थे।

तत्पश्चात् खेमराज का पुत्र बुद्धराज कलिंग देश में तख़्त-नशीन हुआ। यह बड़ा वीर और पराक्रमी योद्धा था। इसने कलिंग देश को जकड़ने वाली जंजीरों को तोड़ कर इसे स्वतन्त्र किया पर मगध का बदला तो यह भी न ले सका। वैसे तो कलिंग नरेश सब के सब जैनी ही थे पर बुद्धराज ने जैन धर्म का खूब प्रचार किया। अपने राज्य के अन्तर्गत कुमारगिरि पर्वत पर उसने बहुत से जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया। नये जिन मन्दरों के अतिरिक्त उसने जैन श्रमणों के लिए कई गुफाएँ भी बनवाईं। क्योंकि उस समय इनकी नितान्त आवश्यकता थी।

महाराजा बुद्धराज ने बड़ी योग्यता से राज्य सम्पादन किया। किसी भी प्रकार के विघ्न बिना शान्ति पूर्वक राज्य सम्पादन करने में यह बड़ा दक्ष था। अन्त में इसने अपना राज्याधिकार अपने योग्य पुत्र भिक्षुराज को प्रदान कर दिया, राज्य छोड़कर

बुद्धराय ने अपनी शेष आयु बड़ी शान्ति से कुमारिगिरि के पवित्र तीर्थ स्थान पर निवृत्ति मार्ग से बिता कर समाधिमरण को प्राप्त कर स्वर्गधाम सिधाया।

ई. स. १७३ पूर्व महाराजा भिक्षुराज सिंहासनारूढ़ हुआ। यह चेत (चैत) वंशीय कुलीन वीर नृप था। आपके पूर्वजों से ही वंश में महामेघवाहन की उपाधि उपार्जित की हुई थी। इनका दूसरा नाम खारवेल भी था।

महाराजा खारवेल बड़ा ही पराक्रमी राजा था। वह केवल जैन धर्म का उपासक ही नहीं वरन् अद्वितीय प्रचारक भी था। वह अपनी प्रजा को अपने पुत्र की नाईं पालता था। सार्वजनिक कामों में खारवेल बड़ी अभिरुचि रखता था। इसने अनेक कूए, तालाब, पथिकाश्रम, औषधालय, बाग और बगीचे बनाए थे। कलिंग देश में जल के कष्ट को मिटाने के लिए मगध देश से नहर मंगाने में भी खारवेल ने प्रचुर द्रव्य व्यय किया। पुराने कोट, किले, मन्दिर, गुफाएें और महलों का जीर्णोद्धार कराने में भी खारवेल ने खूब धन लगाया था। दक्षिण से लेकर उत्तर तक विजय करते हुए उसने अन्त में मगध पर चढ़ाई की। उस समय मगध के सिंहासन पर महा बलवान् पुष्प मंत्री (बृहस्पति) आरोहित था। उसने अश्वमेध यज्ञ कर चक्रवर्ती राजा बनने की तैयारी की थी। पर खारवेल के आक्रमण से उसका मद चूर्ण हो गया। मगध देश की दशा दयनीय हो गई। यवन राजा डिमित आक्रमण करने के लिए आया था पर खारवेल की

वीरता सुनकर मथुरा से ही वापस लौट गया। खारवेल ने मगध से बहुत-सा द्रव्य लूट कर कलिंग में एकत्रित किया। उसने धन भी लूटा और वहाँ के राजा पुष्पमंत्री को अपने कदमों में झुकाया। जो मूर्त्ति नंदराजा कलिंग से ले गया था वह मूर्त्ति खारवेल वापस ले आया। इसके अतिरिक्त कुमार पर्वत पर प्राचीन समय में श्रेणिक नृप द्वारा निर्माणित ऋषभदेव भगवान के भव्य मन्दिर का जीर्णोद्धार भी इसने कराया। इसी मन्दिर में वह मूर्त्ति आचार्य श्री सुस्थितसूरी के करकमलों से प्रतिष्ठित कराई गई। इस कुमार कुमारी पर्वत पर अनेक महात्माओं ने अनशन द्वारा आत्मकल्याण करते हुए देह त्याग किया, इससे इस पर्वत का नाम शत्रुञ्जयावतार प्रख्यात हुआ।

सचमुच खारवेल नृपति को जैन धर्म के प्रचार की उत्कट लगन थी। वह चाहता ही नहीं किन्तु हार्दिक प्रयत्न भी करता था कि सारे संसार में जैन धर्म का प्रचार हो। उसकी यह उच्च अभिलाषा थी कि जैन धर्म का देदीप्यमान झंडा सारे संसार भरमें फहरे। किन्तु कार्यक्षेत्र सरल भी न था क्योंकि भगवान महावीर स्वामी कथित आगम भी लोप हो रहे थे जिसका तत्कालीन कारण दुष्काल का होना था अनेक मुनिराज दृष्टिवाद जैसे अगाध आगमों को विस्मृति द्वारा दुनियां से दूर कर रहे थे। ऐसे आपत्ति के समय में आवश्यक्ता भी इस बात की थी कि कोई महा पुरुष आगमों के उद्धार का कार्य अपने हाथ में ले।

खारवेल नरेश ने इस प्रकार साहित्य की दुःखद दशा देखकर पूर्ण दूरदर्शिता से काम लिया। विस्मृति के गहरे गर्तमें गए हुए आगमों का अनुसंधान करना किसी एक व्यक्ति के लिये अशक्य था इसी हेतु खारवेल ने एक विराट सम्मेलन करने का नियन्त्रण किया। इस सभा में प्रतिनिधियों को बुलाने के लिये संदेश दूर और समीप के सब प्रान्तों और देशों में भेजा गया। लोगोंने भी इस सभा के कार्य को सफल बनाने के हेतु पूर्ण सहयोग दिया।

इस सभा में जिनकल्पी की तुलना करनेवाले आचार्य बलिस्सह बोधलिङ्ग देवाचार्य धर्मसेनाचार्य आदि २०० मुनि एवम् स्थिरकल्पी आचार्य सुस्थिसूरी सुप्रतिबद्धसूरी उमास्वाती आचार्य श्यामाचार्य आदि ३०० मुनि और पइणि आदि ७०० आर्यिकाएं, कई राजा, महाराजा, सेठ तथा साहुकार आदि अनेक लोग विपुल संख्या में उपस्थि थे। इस प्रकार का जमघट होने के कई कारण थे। प्रथय तो कुमार गिरि की तीर्थ यात्रा, द्वितीय मुनिराजों के दर्शन, तृतीय स्वधर्मियों का समागम तथा चतुर्थ जिन शासन की सेवा, इस प्रकार के एक पंथ दो नहीं किन्तु चार काम सिद्ध न करनेवाला कौन अभागा होगा? स्वागत समिति की ओरसे मन खोल कर स्वागत किया गया। खारवेल नरेशने अतिथियों की सेवा करने में किसी भी प्रकारकी त्रुटि नहीं रक्खी। इस सभा के सभापति आचार्य श्री सुस्थि सूरी चुने गये। आप इस पद के सर्वथा योग्य थे। निश्चित समय पर सभा का कार्य प्रारम्भ हुआ। सब से पहले नियमानुसार मङ्गला-

चरण किया गया। इसके पश्चात् सभापतिने अपनी ओर से महत्व पूर्ण भाषण देना आरम्भ किया। प्रथम तो आपने महावीर भगवान के शासन की महत्ता सिद्ध की। आपने अपनी वाक्पटुता से सारे श्रोताओं का मन अपनी ओर आकर्षित कर लिया। आपने उस समय दुष्काल का विकराल हाल तथा जैन धर्मावलम्बियों की घटती, आगमोंकी बरबादी, धर्म प्रचारक मुनिगणों की कमी, प्रचार कार्य को हाथ में लेनेकी आवश्यक्ता आदि सामयिक विषयों पर जोरदार भाषण दिया। श्रोता टकटकी लगाकर सभापति की ओर निहारते थे। व्याख्यान का आशातीत असर हुआ।

भाषण होने के पश्चात् खारवेल नरेश ने आचार्यश्री को नमस्कार किया तथा निवेदन किया कि आप जैसे आचार्य ही जिन शासन के आधार स्तम्भ हैं आपकी आज्ञानुसार कार्य करने के लिये हम सब तैयार हैं। आपके कहने का अर्थ सब का समझ में आगया है। इस कलियुग में जिन शासन के दो ही आधार स्तम्भ हैं—जिनागम और जिन मन्दिर। जिनागम का उद्धार मुनि लोगों से तथा जिन मन्दिरों का उद्धार श्रावक वर्ग से होता है। किन्तु दोनों का पारस्परिक घनिष्ट सम्बन्ध है, एक की सहायता दूसरे को करनी चाहिये। मुनिराजों को चाहिये कि जिन शासन की तरक्की करने के हेतु तैयार हो जावें। देश विदेश में घूम घूम कर महावीर स्वामी के अहिंसा के उपदेश को फैलाने के लिये मुनिराजों को कमर कस कर तैयार हो

जाना चाहिये। ये बातें सब सभासदों को नीकी लगीं इस लिये बिना आक्षेप या विरोध के सबने इन्हें मानली। इस के पश्चात् सभा निर्विघ्नतया विसर्जित हुई। इस सभा के प्रस्ताव केवल क़ागजी घोड़े ही नहीं थे वरन् वे शीघ्र कार्यरूप में परिणत किये गये। उसी शान्त तथा पवित्र स्थल में मुनिराजोंने एकत्रित हो भूले हुए शास्त्रों को फिरसे याद किया तथा ताड़पत्रों, भोजपत्रों आदि पत्तों तथा वृक्षों के वलकल पर उन्हें लिखना आरम्भ किया। कई मुनिगण प्रचार के हित विदेशों में भी भेजे गये थे। खारवेल नृप ने जैन धर्म के प्रचार में पूरा प्रयत्न किया। जिन मन्दिरों से मेदिनि मंडित हो गई तथा पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया गया। इस के अतिरिक्त जैनागम लिखाने में भी प्रचुर द्रव्य व्यय किया गया। जैन धर्म का प्रचार भारत में ही नहीं किन्तु भारत के बाहर भी चारों दिशाओं में करवाया गया।

जैन धर्मावलम्बियों की हर प्रकार से सहायता की जाती थी। एक बार आचार्यश्री सुस्थिसूरी खारवेल नरेश को सम्प्रति नरेश का वर्णन सुना रहे थे तब राजा के हृदय में महाराज संप्रति के प्रति बहुत धर्म स्नेह उत्पन्न हुआ। आपकी उत्कट इच्छा हुई कि मैं भी सम्प्रति नरेश की नाईं विदेशों में तथा अनार्य देशों में सुभटों को भेज कर मुनिविहार के योग्य क्षेत्र बनवा कर जैन धर्म का विशेष प्रचार करवाऊँ। पर उसकी अभिलाषाएँ मन की मन में रह गईं। होनहार कुछ और ही बदा था। धर्म-प्रेमी खारवेल इस संसार को त्याग कर सुर सुन्दरियों के बीच

जा बिराजमान हुआ। उस समय खारवेल की आयु केवल ३७ वर्षकी थी। इसने राजगद्दी पर बैठ कर केवल १३ वर्ष पर्यन्त ही राज कार्य किया। अन्तिम अवस्था में उसने कुमार गिरि तीर्थ की यात्रा की, मुनिगणों के चरण कमलों का स्पर्श किया, पञ्चपरमेष्ठि नमस्कार मंत्र का आराधन किया तथा पूर्ण निवृति भावना से देहत्याग किया।

महाराजा खारवेल के पश्चात् कलिङ्गाधिपति उसका पुत्र विक्रमराय हुआ। यह भी अपने पिताकी तरह एक वीर व्यक्ति था। अपने पिता द्वारा प्रारम्भ किये हुए अनेक अनेक कार्यों को इसने अपने हाथ में लिया और उन्हें परिश्रम पूर्वक पूरा किया। विक्रमराय, धीर, वीर और गम्भीर था। इस की प्रकृति शान्त थी इस कारण राज्यभर में किसी भी प्रकार का कलह और क्रांति नहीं होती थी। इस प्रकार इसने योग्यता पूर्वक राज्य करते हुए जैन धर्म का प्रचार भी किया था।

विक्रमराय के पश्चात् गद्दी का अधिकारी उसका पुत्र बहुदराय हुआ। इसने भी अपने पिता और पितामह की भाँति सम्यक् प्रकार से शासन किया तथा जैनधर्म के प्रचार में अपने अमूल्य समय शक्ति और द्रव्य को लगाया। इस के आगे का इतिहास दूसरे प्रकरणों में लिखा जायगा।

विक्रम से दो सदियों पूर्व के शिलालेख तथा विक्रम की दूसरी सदी के लिखित जैन इतिहास में समय के अतिरिक्त बहुतसी दूसरी बातें मिलती हैं जो इस प्रकार हैं:—

महाराजा खारवेल के शिलालेख से	जैनाचार्योंद्वारा लिखित इतिहास में
कलिंग के राजा खेमराज बुद्धराज और खारवेल (भिक्षुराज)	कलिंगपति महाराजा खेमराज बुद्धराज और खारवेल ।
खण्डगिरि उदयगिरि पर जैन मन्दिर, जैन गुफाएँ ।	कुमार कुमारी पर्वत पर जैन-मन्दिर जैन गुफाएँ ।
मगध का नंदराजा कुमार पर्वत पर से स्वर्णमय जिनमूर्ति ले गया।	मगध का नंदराजा कुमारपर्वत पर से स्वर्णमय जैनमूर्त्ति ले गया।
महाराजा खारवेल मगध से जिन-मूर्त्ति वापस कलिङ्ग में ले आया।	महाराजा खारवेल मगध से जिन-मूर्ति वापस कलिंग में ले आया।
महाराजा खारवेल ने कुमार पर्वत पर एक सभा की थी ।	महाराजा खारवेल ने कुमार पर्वत पर एक सभा की थी ।
महाराजा खारवेल ने विस्मृत होते आगमों को फिरसे लिखाया।	महाराजा खारवेल ने जैनागमों को ताड़पत्रों आदि पर लिखाया ।
महाराजा खारवेल ने जनहित कूए, तालाब, बाग, बगीचे कराए तथा वह मगध से नहर लाया ।	महाराजा खारवेल ने जनता के हितार्थ अनेक शुभ कर्म किये ।

महाराजा खारवेल के शिलालेख से तीन या चार सौ वर्ष पश्चात् लिखे हुए जैनाचार्य के इतिहास की सत्यता की प्रमाणिकता ऊपर के कोष्टकों से साफ मालूम होती है। इस लिये जैनाचार्यों के लिखे हुए अन्य इतिहास पर हम विशेष विश्वास

कर सकते हैं। अब रही बात समय की सो तो इतिहासकारोंने भी अबतक समय निश्चित नहीं किया है। आशा है कि ज्यों ज्यों अनुसंधान किया जायगा त्यों त्यों इस विषय की सत्यता भी प्रकट होकर प्रमाणिक होती जायगी।

जैन श्वेताम्बर समुदाय में लगभग ४५० वर्षों से एक स्थानकवासी नामक फिरका पृथक् निकला है। इस मत वालों का कहना है कि मूर्त्ति पूजा प्राचीन काल में नहीं थी यह अर्वाचीन समय में ही प्रचारित की गई है। इस विषय के लिये वाद विवाद ४५० वर्षों से चल रहा है। इस वाद विवाद की ओट में हमारी अनेक शक्तियाँ क्या शारीरिक और क्या मानसिक व्यर्थ नष्ट हो रही हैं।

किन्तु महाराजा खारवेल के शिलालेख से यह समस्या शीघ्र ही हल हो जाती है क्योंकि इस शिलालेख में साफ साफ लिखा हुआ है कि मगध नरेश नंदराजा कलिङ्ग देश से भगवान् ऋषभदेव की स्वर्णमय मूर्त्ति ले गया था जिसे खारवेल वापस ले आया। इस स्थल पर यह बात विचार करने योग्य है कि जिस मन्दिर से नंदराजा मूर्त्ति ले गया होगा वह मन्दिर नंदराजा से प्रथम का बना हुआ था यह स्वयं सिद्ध है। यह मन्दिर विशेष पुराना नहीं था कारण कि वह मन्दिर श्रेणिक नरेश का बनवाया हुआ था। इधर नंदराजा और श्रेणिक राजा के समय में अधिक

अन्तर न होने से यह बात सत्य होगी ऐसी सम्भावना हो सक्ती है।

दूसरी बात यह है कि श्रेणिक राजाने जिस मन्दिर को बनवाया होगा वह दूसरे मन्दिर को देखकर ही बनवाया होगा। इससे सर्वथा सिद्ध होता है कि श्रेणिक राजा के समय से भी प्राचीन मन्दिर उपस्थित थे। श्रेणिक राजा भगवान महावीर के समय में हुआ था और वह भगवान का पूर्ण भक्त भी था। यदि जैनमूर्त्ति बनाना जिन धर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध होता तो अवश्य अन्यान्य पाखण्ड मतों के साथ मूर्त्ति पूजाका भी कहीं खंडनात्मक विवरण होता पर ऐसा किसी भी शास्त्र में नहीं है। अतएव मूर्ति पूजा भगवान को भी मान्य थी ऐसा मानना पड़ेगा। कुमार पर्वत की गुफाओं में चौबीस तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ खारवेल के समय के पहले की अबतक भी विद्यमान हैं। मूर्त्ति मानना या मूर्त्ति न मानना यह दूसरी बात है पर सत्य का खून करना यह सर्वथा अन्याय है।

सज्जनो! जैन मन्दिर और मूर्त्तियों ने इतिहास पर खूब प्रकाश डाला है और इन से जैन धर्म का ही नहीं पर भारत का गौरव बढ़ा है तथा इनसे यह भी प्रकट होता है कि पूर्व जमाने में जैन धर्म केवल भारत के कौने कौने में नहीं पर यूरोप और अमरीका तक किस प्रकार देदीप्यमान था क्या हमारे स्थानक-वासी भाई इन बातों पर गम्भीरता पूर्वक विचार नहीं करेंगे कि

जैन धर्म में मूर्त्ति का मानना पूजना कितने प्राचीन समय से है और मूर्त्ति पूजना आत्मकल्यान के लिये कितना आवश्यक निमित कारण है प्राचीन इतिहास और जैन शास्त्रों के अध्ययन से यह ही सिद्ध होता है कि मूर्त्तिपूजा करना आत्मार्थियों का सब से पहला कर्तव्य है।

५५

ओसवाल कुल भूषण

क्या आप ओसवाल हैं ?

क्या आपको ओसवाल जाति का गौरव है ?

क्या आपको ओसवाल जाति के इतिहास से सच्चा और शुद्ध प्रेम है ?

क्या आप ढाई हजार वर्षों की प्रधान घटनाएं जानना चाहते हो ?

यदि इनका उत्तर हाँ में है तो आज ही आर्डर भेजके

"समरसिंह"

नामक पुस्तक मँगवाके अवश्य पढ़िये, आपकी अन्तरात्मा में एक नयी वीरता की बिजली उमड़ उठेगी। पृष्ठ ३०० सुन्दर चित्र ८ प्रचारार्थ मूल्य मात्र १)।

पता—

श्री रत्न प्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला,

मु० फलोदी (मारवाड़)